RESEARCH PAPER | Sanskrit | Volume : 5 | Issue : 6 | June 2015 | ISSN - 2249-555X



Prachin Evam Navin Mulyo Ki Avadharnae :- Tulnatmak Samixa

प्राचीन एवं नवीन मूल्यों की अवधारणाएँ :– तुलनात्मक समीक्षा

KEYWORDS

Dr. Chitra Sharma

Lecturer, Arya Mahila Vidyapeth T.T.(CTE) College, Bhusawar, Bharatpur (Raj.)

जीवन–मूल्य आचरण तथा व्यवहारों के मापदण्ड या मानक हैं। ये मानवीय अनुभवों के साथ ही विविध सांस्कृतिक, सामाजिक परम्पराओं पर भी अवलम्बित होते हैं। हमारे आत्मवाद, ईश्वरवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, परलोकवाद आदि दार्शनिक धार्मिक सिद्धान्तों का भी मूल्यों के नियमन एवं विकास में बहुत योगदान होता है। विविध सामाजिक परम्पराऐं सदियों के मानवीय अनुभवों के आधार पर बनती हैं। कर्त्तव्य–निष्ठा हमारी संस्कृति की एक प्रधान वस्तु रही है। प्राचीन भारत में धर्म से प्रेरित होकर ही कर्त्तव्य पालन किया जाता था। ज्ञानी लोग कर्त्तव्य के लिए ही कर्त्तव्य करते थे न कि किसी फल विशेष की इच्छा से धर्म–अधर्म, कर्तव्य–अकर्त्तव्य आदि का विचार सदैव ही आध्यात्मिक से जुडा रहा है, जो कि हमारी संस्कृति का प्रधान वैशिष्ट्य रहा है।

प्रत्येक मावन समाज के अपने कुछ मूल्य होते हैं। मनुष्य तथा समाज अपने इन्हीं मूल्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है और उनके प्रयास भी इन्हीं मूल्यों की ओर इच्छित होते हैं। वुडस ने अपने समाजशास्त्र की पुस्तक में मूल्यों के सम्बन्ध में लिखा है कि– ''मूल्य दैनिक जीवन के व्यवहारों को नियन्त्रित की सामान्य विधि है, जो जीवन के पृथक–पृथक क्षेत्रों में पृथक–पृथक होता है। जैसे–आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक मूल्य, नैतिकता के क्षेत्र में नैतिक मूल्य आदि।

संस्कृत भाषा में मूल्य के लिए 'इष्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है–'वह जो इच्छित है।' ये हमारी इच्छाओं की पुष्टि का प्रयास करते हैं, ज्ञान इस प्रयास का मार्ग प्रशस्त करता है और ज्ञान के आधार पर चेतनावस्था में प्राप्त किये गये लक्ष्य ही मूल्य हैं। मूल्य मनुष्य के जीवन तथा समाज के प्रत्येक आयाम से सम्बन्धित होते हैं। मूल्य ही व्यक्ति जीवन को आदर्श प्रशस्त करते हैं। मूल व्यक्ति समूह को भौतिक एवं ही व्यक्ति जीवन को आदर्श मार्ग प्रशस्त करते हैं। मूल्य व्यक्ति समूह को भौतिक एवं सामाजिक रूप से समायोजित करने का साधन(माध्यम) होते हैं। जिनके माध्यम से मनुष्य अपनी सामाजिक प्रगति की अभिव्यक्ति कर पाता है। मूल्य व ज्ञान परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं तथा इनके मध्य अन्तर्सम्बन्ध जीवन के सभी पक्षों पर लिए जाने वाले निर्णयों के लिए महत्वपूर्ण मार्ग प्रशस्त करते है।

विभिन्न विद्वानों और दार्शनिकों ने अपने–अपने विचारों द्वारा मूल्यों की व्याख्या कर परिभाषित एवं वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। यह देखा गया है कि सांस्कृतिक भिन्नता के कारण मूल्यों के अर्थ, स्वरूप और प्रकार में भिन्नता आ जाती है। भारतीय दृष्टिकोण में चार प्रमुख मूल्य माने गये हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जिन्हें भारतीय दर्शन में चार पुरूषार्थ के यप में भी जाना जाता है। भारतीय दर्शन के ये पुरूषार्थ दो मुख्य धाराओं में विभक्त रहते हैं–

(1) लौकिक (अर्थ एवं काम)

(2) आध्यात्मिक (धर्म एव मोक्ष)

भारतीय दृष्टिकोण में मूल्यों की परिभाषा के अनुसार – मानव के द्वारा अनुभूत किसी भी आवश्यकता की तुष्टि का जो भी साधन है, वह साधन मूल्य है, चूंकि मानव की आवश्यकताऐं व इच्छाऐं अनन्त हैं। अतः ये मूल्य भी अनन्त होते हैं। 'अर्थ' के अन्तर्गत मानव की आश्यकताऐं आती हैं। वेदों के माध्यम से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सदैव धन का उपार्जननीति व उचित साधनों से ही किया जाना चाहिए। अवैध तरीकों से अर्जित किया गया धन चिरस्थयी नहीं होता है। ऋग्वेद में कहा गया है – '' न ऋते श्रान्तव्य संख्यामः देवाः''। इसी प्रकार का वर्णन हमें अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में भी मिलता है, उदाहरणार्थ – ''आरोहण्याकृमणं जीवतो अयन''।(अथर्व –05.30.7) इन कुछ उदाहरणों द्वारा अर्थ की महत्ता सिद्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे यहॉ धन हेय नहीं अपितु वह धर्म एवं मोक्ष का साधन माना गया है। किन्तु आज हमारे सामज के आर्थिक मूल्यों में ह्रास उत्पन्न हो गया है। आज व्यक्ति आधिकाधिक व्यक्तिवादी, व्यक्तिनिष्ठ, स्वार्थी और स्वकेन्द्रित हो गया है। हमारे समाज के तीन महान् शत्रु हैं – भोग, अधिकार और धन। आधुनिक समाज में भोगवादी प्रवृत्तियॉ बढ रही हैं, अधिकार और अहं बढ रहा है। भोग सर्प की तरह समाज को डस रहा है, धन ने पशुता उत्पन्न कर दी है और अधिकारों के कारण दानवी प्रवृत्तियॉ उभरकर आ रही हैं। आदमी धन बटोरते–बटोरते व्यवस्था पर, सत्ता का अंकुश गहरा करता हुआ अधिकरों को बटोरता है, अधिकार प्राप्त होते ही धन बटोरता है, धन बटोरते–बटोरते फिर भोग की तरफ बढता है। आज के समाज का व्यक्ति भोग, अधिकार और धन के चक्रव्यूह में फँस गया है। हमें परिग्रह से अपरिग्रह की यात्रा करनी है, भ्रष्टाचार से ईमानदारी की ओर बढकर स्वास्थ्य आर्थिक मूल्यों की स्थापना करनी है।

भौतिक लक्ष्यों की पूर्ति 'काम' मूल्य के अन्तर्गत आती हैं। 'काम' कोई देहधारी प्राणी न होकर संकल्प से उत्पन्न होने वाली वासना है, जिसके बिना मानव इसका आस्वादन करने में समर्थ नहीं हो सकता। जैसा कि साहित्य दर्पण में कहा गया है–

सावासनानां सम्यानां रसस्यास्वादनं भवेत्।

निवार्सनास्तुं रहगन्तः काष्ठकुअयाश्मतन्निधाः। (सा.दा.)

वेद के अनुसंधान से ज्ञात होता है कि यह काम सारी सृष्टि का मूल है, जैसे ऋग्वेद में बताया गया है कि मन का प्रथम रेतस् काम आरम्भ से ही विद्यमान है।

कामस्तदग्रे समर्वतताधि मनसरेतः प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीÞया कवयो मनीÞाा।। (ऋ. 10.129.4)

काम हमारे उस पुरूषार्थ का नाम है जिसके बिना सृष्टि कल्पना ही असम्भव है इसलिए काम को नियंत्रित व मानवीय तरीके से स्वीकार किया गया है।

आज य सर्वविदित है कि 'काम' ही सर्वाधिक अमर्यादित व अमानवीय रूप में सामने आया है। आज 'काम' सृष्टि का नियामक न होकर शारीरिक भोग एवं पवायना का साधन मात्र बन गया है, इसके परिणामस्वरूप अनेक विकृतियाँ समाज में आयीं हैं। पाशविकता की प्रकृति मानव समाज में बढ गयी हैं और उसके उत्प्रेरक के रूप में टी.बी., सिनेमा, इंटरनेट आदि संचार के साधन प्रचलित हैं। 'काम' ही एकमात्र पुरूषार्थ रह गया है। सम्पूर्ण मानव समाज इसके अन्धानुकरण और अधिकाधिक प्राप्ति के लिए अपने को समर्पित किये बैठा है। जिसके परिणामस्वरूप निठारी जेसे काण्ड प्रकट होते हैं। हम आज अत्यधिक 'काम' से अभिशप्त हैं। 'एड्स' जैसे रोग इस ही लिए जन्म ले रहे हैं, भय है कहीं यह सम्पूर्ण सभ्यता को ग्रस्त न कर ले। यहॉ हमें अपने पुराने जीवन मूल्यों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। काम साधन ही रहे, साध्य न बने तभी सम्पूर्ण मानव समाज सुरक्षित रह सकेगा । श्रीमदभागवतद् गीता में धर्माविरूद्ध काम को भगवा का रूप कहा गया है–

'' धर्माविरूद्धो कामौहम्'' (श्रीमदभागवद् गीता – अध्याय 7, श्लोक 11)

भारतीय मतानुसार 'धर्म' कुछ सनातन शाश्वत नियमों का नाम है जो निरपेक्ष है, जिनमें वैयक्तिकता का नाम नहीं है, यह समस्त सामाजिक तथा नैतिक व्यवस्थाओं का आधार है। यह जीवन के सभी पक्षों की जड में रहता है।

धर्म शब्द का अर्थ विस्तृत और व्यापक है। धर्म शब्द का व्यापक अर्थ उसके व्याकरणगत मूलधातु 'धृ' पर आश्रित है, 'धृ' का अर्थ धारण करना होता है।

Volume : 5 | Issue : 6 | June 2015 | ISSN - 2249-555X

धर्म से अभिप्राय उन गुणों अथवा लक्षणों से है जो किसी वस्तु के स्वरूप को धारण करते हैं। धारण करने का अर्थ –'अपनाना, पालन करना और बनाये रखना है।

महाराज मनु ने अपने ''अमरग्रंथ –मनुस्मृति में वैदिक धर्म के अपने दस लक्षण गिनाते हुए कहा है –

धृतिः क्षमा दमौस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणाम् ।।

(मनुस्मृति – अध्याय 6, श्लोक 91)

धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद, सत्य, अक्रोध से धर्म के दस लक्षण हैं। धर्म रहित कार्य के फल के सम्बन्ध में बताते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि –

अधर्मेणधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्ना जयति समूलस्तु विनश्यति।।

(मनु – 4,174)

अधर्म का फल कुछ समय के लिए अच्छा दिखाई देता है, परन्तु उचित समय आने पर वह उसी तरह विनष्ट हो जाता है जैसे जड कटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है। जैसे हनन किया हुआ धर्म हनन करने वाले का नाश कर देता है। रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है इसलिए धर्म का हनन नहीं करना चाहिए, इस भय से की धर्म हनन करने वाले का नाश कर देता है। जैसा कि मनु स्मृति में कहा गया है –

''धर्म एव हतोहन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।''

धर्म का महत्व बताते हुये मनुस्मृति में कहा गया है कि –

''मनुष्य जिन वस्तुओं के मोह में जकडा रहता है, वे सब जीवन काल के साथी हैं, मृत्यु के बाद केवल धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है।''

(मनु 08, 16)

उपनिषदों में कहा गया है कि –'' सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करो। दक्षिणा के रूप में प्रिय धन आचार्य को भेंअ करो। गृहस्थ में प्रवेश करो। ताकि कुटुम्ब परम्परा न टूट जाये।''

(तै. उ. शिक्षावल्ली, अनुवाद–77)

अतः वैदिक वाड मय में धर्म को मूल्यों की खान बताकर उस पर चलने के लिए हमें अग्रसर किया गया है।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार –'' समस्त समाज का और उसके सदस्य के नाते व्यक्ति का कल्याण सद्भावनाओं में परिणत मनसा, वाचा व कर्मणा की एकता से सम्भव होता है, जिसे धार्मिक दृष्टि से एक पवित्र कार्य माना जाता है।''

मूल्य एवं धर्म मानव जाति के इतिहास में परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। विशेष रूप से नैतिकता का सम्बन्ध मानव मूल्यों, उचित आचरण से रहा है। धर्म का सम्बन्ध केवल जीवन की सामान्य मान्यताओं से ही नहीं बल्कि अतिमानवीय एवं अलौकिक मूल्यों से भी रहा है। धर्म धारणा है जिसके अनुसार जो आत्मा में उत्कृष्ट है, वही स्वभाव से गम्भीर है। धर्म इन्सान का उसकी पवित्र एवं सर्वोच्च आत्मा से जोडने का प्रयत्न करता है। यह आध्यात्मिक मूल्यों की वास्तविकता में विश्वास रखता है। नैतिक चेतना मानव के सर्वश्रेष्ठ जीवन और उन उच्चतम मूल्यों का विकास करती है, जिनको इन्सान कार्यान्वित कर सकता है। व्यापक दृष्टि से सोचा जाये तो यह कह सकते हैं कि नैतिकता धर्म से निकली है। धर्म की गिरावट से नैतिकता में गिरावट आती है।

एच.एच.टाइटस (1966) ने लिखा है, ''धर्म के बिना नैतिकता प्रेरणाहीन और भावशून्य होती है, जबकि नैतिक महत्व से त्यागा हुआ धर्म अनैतिकता की ओर अग्रसर होता है।'' प्रत्येक युग में बुद्धिमान व्यक्ति इस विश्वास पर पहुँचता है कि एक नैतिक शक्ति इस लोक से परे है जो उनको अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और बुरा कार्य करने से रोकती है।

अतः धर्म ने समस्त मानव सभ्यता के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। धर्म सभी लोगों में सदैव पाया गया है। भूतकाल में था और आज भी है। जैसे–जैसे हम इस सदी के अन्त की ओर जा रहे हैं, वैसे–वैसे यह शंका उत्पन्न होती जा रही है कि कया धर्म व्यक्ति और समाज के लिए वैसे ही आवश्यक बना रहेगा जैसा कि भूतकाल में रह चुका है। यह कहना कोई गलत ना होगा कि आज मानव सभ्यता में धर्म धीरे–धीरे कमजोर पडता जा रहा है। आज धर्म के स्वरूप पर और धर्म सम्बन्धी क्रिया कलापों पर शंका पैदा हो रही है। धर्म के नाम पर घृणा का प्रचार हो रहा है। धर्म जो मानव समाज को एकत्रित एवं संगठित रखने का आकर्षण बल था, वह प्रतिकर्षण बल के रूप में परिवर्तित होता प्रतीत हो रहा है। प्राचीन काल में सामाजिक सामाजिक समस्याओं को धर्म के आधार पर हल किया जाता था, परन्तु अब धर्म ही स्वयं समस्या बन गया है।

मनुष्य का जीवन जिन ध्येयों को आगे रखकर प्रवृत्त होता है, उन्हे शास्त्रीय भाषा पुरूषार्थ कहते हैं। धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष, में मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। धर्म, आर्थ, काम तो सीढियां हैं जिन पर चढकर व्यक्ति मोक्ष तक पहुँच सकता है। वस्तुतः मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है मोक्ष प्राप्ति ही है जो किसी सांसारिक मोह–माया में नहीं फँसते, उन्हें निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति होती है। ये दोनों मोक्ष के स्वरूप का स्पष्ट वर्णन है।आत्मा–परमात्मा का साक्षात्कार ही वास्तविक मुक्ति है। उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित मोक्ष का सिद्धान्त यह है कि मानव स्वभाव वास्तव में दिव्य है, मानव के लिए ईश्वरत्व की जानकारी प्राप्त करना तथा उसमें तादात्म्य स्थापित करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

न्यायसूत्र (1.22, 2) में मोक्ष को परिभाषित करते हुए लिखा है कि –

''दुःख जन्म प्रकृति दोष मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग।''

अर्थात् जब मिथ्या, ज्ञान अविधा लोभ आदि दोष, विषय, दुर्व्यसनों में निवृत्ति, जन्म, और दुःख का उत्तरोत्तर विलीनीकरण हो जाये तो वही मोक्ष है। मोक्ष ही मानव जीवन की चरम स्थिति है।

लेकिन आज की स्थिति में देखते हैं कि मोक्ष पुरूषार्थ ही नहीं रह गया है फिर उसके साधन एवं उपाय के विषय में चिन्तन करने का समय किसके पास है।

''मरणमेव मोक्ष'' चार्वाक इसी सूत्र को ध्यान में रखते हुए 'काम और अर्थ' इन दोनों मुख्य पुरुषार्थों का ही प्रतिपादन करता है। धर्म क्यों कि व्यवस्था को चलाने के लिए आवश्यक है इसलिए उसकी सत्ता मात्र को स्वीकार किया जाता है। आज संक्रमण के काल में आवश्यक है कि हम हमारे प्राचीन एवं वर्तमान जीवन मूल्यों पर विचार करें तथा दोनों में सामंजस्य बनाते हुए उनकी पुनर्स्थापना करें।

यह सत्य है कि युग, समय व देशकाल में परिवर्तन के साथ–साथ संस्कृति व मूल्यों में भी परिवर्तन होता है अर्थात युग परिवर्तन के साथ–साथ मूल्य भी बदलते रहते है। आज के वैज्ञानिक युग में जबकि दुनियाँ ने बहुत प्रगति कर ली है। हमें अपनी सफलता पर गर्व भी है। परन्तु जिस तीव्र गति से प्रगति हो रही है, या हुई है उस गति से हमारे जीवन आदर्श व मूल्यों का प्रचार प्रसार अपेक्षाकृत धीमा रहा हैं। आज हम अपने जीवनादर्शो की सांस्कृतिक धरोहर का सुरक्षित रख पाने में असफल हो रहे है। अपने शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रति अपनी आस्था खोते जा रहे हैं। अपने तत्कालिक जीवन के क्षणिक सुख के लिए भरसक परिश्रम व मेहनत कर रहे हैं, परन्तु उसका फल उसका फल अपेक्षाकृत कम हासिल हो रहा है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय प्रगति एवं शान्ति के लिए सदाचारण, सत्य, अहिंसा व शान्ति, प्रेम, जैसे शाश्वत व परम्परात मूल्यों को पुनर्स्थापित करने की महती आवश्यकता है।

''प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।

किं नु में पशुभिस्तुल्यं किं वा सत्पुरूषैरिव।।''

अर्थात् मनुष्य प्रतिदिन अपने चरित्र की परीक्षा करे कि वह मूक पशुओं के तुल्य कितना है और कितना महापुरूषों के तुल्य है।

व्यक्ति के अन्दर मानवीय भाव तभी पैदा होंगे, जब वह मूल्यों की छाया तले रहकर कार्य व व्यवहार करें। एक व्यक्ति मानवीय व्यवहार तभी सही तरीके से कर पायेगा जब वह मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात् कर ले या मूल्यों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर ले।

इस विषय पर मुझे महाभारत का एक प्रसंग ध्यान में आता है कि जब युधिष्टिर, अर्जुन इत्यादि राजकुमारों को गुरूजी शिक्षा दे रहे थे, तब उन्होंने एक दिन कहा कि सदा सत्य बोले''। इस पक्ति को याद करना है, दूसरे दिन युधिष्ठिर को छोडकर शेष सभी भाईयों ने गुरूजी के पास जाकर उन्होंने उसे याद कर लिया है, पुनः दो दिन बाद गुरूजी द्वारा पूछने पद युधिष्ठिर ने कहा कि उन्होंने इसे अब याद कर लिया है क्योंकि अब वे इसे पूर्णतः अपने जीवन में उतार चुके है।

Volume : 5 | Issue : 6 | June 2015 | ISSN - 2249-555X

वर्तमान आधुनिक भौतिकवादी युग में ये आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य छिन्न–भिन्न हो गये हैं। धन, पूँजी सम्पति ही मनुष्य का देवता है। समाज में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच सारे रागात्मक संबंध सूत्र छिन्न–भिन्न हो गये हैं। सभ्यता और संस्कृति का मुखौटा चढाकर आज का मनुष्य दुनियाँ को ही नहीं, स्वयं को भी छलता है। मूल्यों के छिन्न–भिन्न हो जाने के कारण आज का आदमी दिशाहीन होकर भटक रहा है। आज व्यक्ति और समाज कुण्ठाओं से ग्रस्त है। इस भौतिकवादी युग में आज का आदमी दिशाहीन होकर सन्त्रस्त और पीडित है। हर दिन हर क्षण नये–प्रश्न और नई–नई समस्याऐं उपस्थित हो रही हैं।

इस युग में तथा कथित वैयक्तिक मूल्यों में स्खलन हुआ है। आज मनुष्य में सत्य और प्रेम नहीं, घृणा और झूठ है, धैर्य और सहनशीलता नहीं, अधैर्य और असहनशीलता है। त्याग और अनासक्ति नही, भोग और आसक्ति है, ऋजुता और मृदुता नहीं, कठोरता और कटुता है, अभय और आत्मबल नहीं, भय और शक्तिहीनता है, आत्मविश्वास और प्रमाणिकता नहीं, घोर अनास्था और अप्रमाणिकता है। आज पूरा समाज मूल्यहीनता के कारण पतन के गर्त की ओर जा रहा है।

यह निर्विवाद सत्य है कि आज का युग मूल्यहीनता का युग है, हमें वैयक्तिक और सामाजिक, धार्मिक और वैज्ञानिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से श्रेयस्कर मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात् करना है।

डॉ. चित्रा भार्मा

प्रवक्ता ;संस्कृतद्ध

ए.वी.एम.सी.टी.ई.,

भुसावर भरतपुर ;राज0द्ध